THE HINDU

Date: 13-08-25

Dogs and laws

Urban local bodies need funding for shelters and sterilisation drives

Editorials

The August 11 Supreme Court order represents the most forceful judicial intervention yet on the matter of free-roaming dogs. By directing Delhi and its satellites to collect every street dog within eight weeks, confine them permanently in pounds, and expand shelter capacity at speed, the Court has signalled its willingness to override administrative lethargy. Delhi records roughly 30,000 dog bite cases a year and rabies still kills poor urban residents with patchy access to post-exposure prophylaxis. The Court's blunt instrument conflicts with the Animal Birth Control Rules 2023, specifically its doctrine of "capture, neuter, vaccinate, release", and which forbid municipalities from permanently relocating healthy dogs or impounding them for long periods except if a dog is rabid, incurably ill or found to be dangerously aggressive by a veterinarian. The Rules have failed the test of numbers, however. Urban dog populations have continued to swell despite sporadic sterilisation drives because 70% coverage, below which reproduction rebounds, has almost nowhere been reached. The prescription to return dogs to their territories has entrenched packs in the same high-density neighbourhoods where children play and garbage accumulates. The Rules also block municipalities from exploring alternative strategies such as long-term impoundment. Now, if the Rules are intact, municipal officers who confine dogs could be prosecuted; if they obey the Rules, they risk contempt of court.

Policymakers should treat this conflict as an opportunity to confront an outdated legal setup. The Prevention of Cruelty to Animals Act 1960 was enacted when India's urban footprint was modest. Today's conurbations with dense informal settlements cannot afford such dog populations. Entrenched ideological positions that romanticise "community dogs" and regard confinement as oppression take insufficient account of the dense human ecology. A modern statute should clearly distinguish between sociable dogs that can find homes; aggressive or chronically ill dogs that require euthanasia; and the large residual category that can live in proper shelters -- but none on public roads. Cities should impose duties on municipalities, specify minimum staffing and veterinary standards for pounds, and tie fiscal transfers to reductions in morbidity. Urban local bodies also need steady funding, perhaps under the National Centre for Disease Control, to bankroll the construction and operation of shelters and to fund large-scale sterilisation teams. Veterinary education councils should integrate shelter medicine into curricula to ensure a workforce exists to staff new facilities. Without such support, Delhi risks swapping its dog menace with underfunded canine slammers at the city's edge, invisible but also cruel.

Date: 13-08-25

कृषि निर्यात क्यों घटा और आयात क्यों बढ़ा?

संपादकीय

किसानों के हित में अमेरिकी उत्पाद न खरीदना सरकार का साहसी कदम है, लेकिन यह स्थिति आई कैसे जबकि लगातार जरूरत से ज्यादा अनाज पैदा हो रहा है? क्यों भारतीय कृषि उत्पादों का निर्यात पिछले सात साल में आयात के मुकाबले घटता गया है? ट्रम्प का अमेरिकी कृषि उत्पाद खरीदने का दबाव तो विगत मार्च से शुरू हुआ। लेकिन इसके पहले के सात वर्षों में कृषि निर्यात-आयात में अंतर कम होता गया यानी हमने बेचा कम, खरीदा ज्यादा। वर्ष 2018-19 भारत का कृषि निर्यात 39.2 अरब डॉलर था और आयात 20.9 अरब यानी लगभग आधा । लेकिन वर्ष 2024-25 में निर्यात बढ़कर मात्र 51.9 अरब (सवा गुना) हुआ, जबकि आयात 38.5 अरब (लगभग दूना) हो गया। यह स्थिति बीच के दो वर्षों को छोड़ लगातार बनी रही यानी भारतीय किसानों का कृषि उत्पाद या तो विश्व बाजार में महंगा होने के कारण नहीं बिका या सरकार ने देश में महंगाई रोकने के लिए इनके निर्यात पर रोक लगा दी। लगातार दो-तीन वर्ष अगर चावल के निर्यात को सरकार रोककर रखेगी तो किसान खुशहाल कैसे होगा ? निर्यात पर रोक के कारण किसानों का टर्म्स ऑफ ट्रेड नकारात्मक होने लगा। कहने को तो किसानों को कई तरह की सब्सिडी दी जाती हैं लेकिन जब भी उनका उत्पाद विश्व बाजार में ज्यादा कीमत पाने लगता है तो निर्यात इसलिए रोका जाता है ताकि घरेलू कीमतें न बढ़ें। लेकिन निर्यात रोककर लाभ को बाधित करना एक किस्म की निगेटिव सब्सिडी है।

Date: 13-08-25

एक नई हरित क्रांति लाने का मौका है

शेखर गुप्ता, (एडिटर-इन-चीफ, 'द प्रिन्ट')

एमएस स्वामीनाथन जन्म-शताब्दी कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वादा किया कि किसानों, मछुआरों और डेयरी से जुड़े लोगों के हितों की रक्षा हर हाल में करेंगे चाहे इसकी ज रोकना होता था और चुकानी पड़े। यह कीमत कौन-सी है? भारत के लोग भारत परेशान हो जाता था। उस समय उनकी शर्तों में से अपनी सम्प्रभुता को सबसे ऊपर रखते हैं। राष्ट्रीय एक यह भी थी कि भारत जनसंख्या वृद्धि पर सख्ती से स्वाभिमान के लिए वे अस्थायी नौकरियों के नुकसान लगाम लगाए। वह दौर हरित क्रांति और 1971-72 तक को भी चुपचाप सह लेते हैं। झींगा पालन करने वाले अनाज में आत्मनिर्भरता के साथ खत्म हुआ। किसान, बासमती और मसाले उगाने वाले, कालीन बुनकर, होजयरी कामगार और गुजरात के हीरे-रत्न काटने-जोड़ने और सोने के आभूषण बनाने वाले - 50% टैफ का असर पड़ेगा। और वर्ग है, जो शायद इन सबके बराबर संख्या में है- किसान। भारत अमेरिका को बड़े पैमाने पर बासमती चावल, मसाले, फल-सब्जियां, पैकेज्ड फूड, चाय-कॉफी निर्यात करता है, जिसकी कुल कीमत 6 अरब डॉलर से अधिक है। 50% टैरिफ लगने पर यह सब टिक पाना मुश्किल होगा।

लेकिन अमेरिका को चुनौती देना भारत के किसी नेता के लिए निजी जोखिम नहीं होता। इंदिरा गांधी ने भी ऐसा आत्मविश्वास के साथ किया था और उन्हें इसका फायदा मिला था। विदेशी दबाव की बात आते ही भारत आमतौर पर अपने मौजूदा नेता के पीछे एकजुट हो जाता है। इस मायने में, मोदी के लिए कोई व्यक्तिगत जोखिम नहीं है। लेकिन चूंकि इस वक्त वे बेहद दृढ़ दिख रहे हैं, हम उन्हें एक ऐसे रास्ते की ओर इशारा कर सकते हैं, जिसमें वास्तव में जोखिम हो सकते हैं। अगर यह सफल हुआ, तो यह कृषि में क्रांति ला सकता है। इससे न केवल अगले पांच साल में किसानों की आमदनी दोगुनी हो सकेगी, बल्कि वे वैश्विक स्तर पर भी प्रतिस्पर्धी बनेंगे।

जिस मौके पर मोदी बोल रहे थे, वह मायने रखता है। स्वामीनाथन- जिन्हें इस सरकार ने भारत रत्न से सम्मानित किया- को हरित का जनक माना जाता है और उन्हें भारत को जहाज से अनाज मंगाने वाली शर्मिंदगी से मुक्त करने का श्रेय दिया जाता है। 1960 के दशक में अमेरिकी राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन की सरकार को बस अगला अनाज का जहाज रोकना होता था और भारत परेशान हो जाता था। उस समय उनकी शर्तो में से एक यह भी थी कि भारत जनसंख्या वृद्धि पर सख्ती से लगाम लगाए । वह दौर हरित क्रांति और 1971-72 तक अनाज में आत्मनिर्भरता के साथ खत्म हुआ ।

यह ध्यान रखना जरूरी है कि स्वामीनाथन और उनके साथियों- जिनमें महान अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक नॉर्मन बोरलॉग भी शामिल थे- के तरीकों को लेकर उस समय कड़ी आलोचना भी हुई। सबसे ज्यादा विरोध करने वालों में एक्टिविस्ट और कम्युनिस्ट थे। उस दौर में हाइब्रिड बीजों को लेकर बहुत डर था और यह शंका भी कि कोई भी मशीनीकरण सिर्फ बड़े किसानों के फायदे का होगा। इसी वजह से स्वामीनाथन के नेतृत्व में सुधारकों के समूह ने पहले खेत परीक्षण छोटे किसानों के साथ शुरू किए 1966 में इंदिरा सरकार के लिए 18,000 टन हाइब्रिड बीज (मूल्य 5 करोड़ रु.) प्रदर्शन के लिए मंगाने की अनुमति देना कितना मुश्किल था, पर इंदिरा ने हिम्मत

दिखाई। जोखिम यह था कि नए बीज कोई खतरनाक रोग ला सकते थे, या प्रयोग पूरी तरह असफल हो सकता था, लेकिन इंदिरा ने जोखिम लिया और इनाम मिला, भारत को भूख और अपमान से मुक्ति ।

जंग के समय जोखिम उठाना मजबूरी है, लेकिन सबसे साहसी नेता वे होते हैं जो शांति के समय भी जोखिम चुनते हैं। इसके लिए एक ठोस कारण, एक धक्का चाहिए। 1991 में, नरसिंह राव - मनमोहन सिंह के लिए यह कारण था भुगतान संकट । 1999 में, वाजपेयी के लिए कारण बना पोखरण परमाणु परीक्षण के बाद लगे प्रतिबंध। पिछले 20 साल में हमें वैसा कोई बड़ा संकट नहीं झेलना पड़ा और पिछले 25 साल की तेज विकास दर ने हमें लापरवाह भी बना दिया है।

जानकार और विशेषज्ञ लंबे समय से मैन्युफैक्चरिंग बुनियादी ढांचा, व्यापार की शर्तें, टैरिफ घटाने जैसे कई जरूरी सुधारों की बात कर रहे हैं। हर सुधार कठिन है,खासकर हमारे प्रशासनिक ढांचे में। लेकिन जैसे पहले संकटों ने भारत में उद्योग, वित्त, प्रतिस्पर्धा और तकनीक में बड़े सुधार लाए, वैसे ही क्यों न इस मौके का इस्तेमाल कृषि सुधारों के लिए किया जाए? सच कहें तो हरित क्रांति के बाद से भारतीय कृषि दूसरे गियर में ही चल रही है। आखिरी बड़ा कृषि सुधार वाजपेयी सरकार ने 2002 में किया था, जब उन्होंने जीएम कपास के बीज को मंजूरी दी जबकि उनके स्वदेशी समर्थकों का जोरदार विरोध था । पोखरण-2 के बाद वे पहले ही जय जवान, जय किसान को जय विज्ञान तक बढ़ा चुके थे।

2002-03 से 2013-14 के बीच, कपास का उत्पादन 1.36 करोड़ गांठ से बढ़कर 3.98 करोड़ गांठ हो गया- यानी 193% की छलांग प्रति हेक्टेयर उत्पादन 302 किलो से बढ़कर 566 किलो हो गया। भारत, जो हमेशा कपास आयात करता था, बड़ा निर्यातक बन गया और 2011-12 में 4 अरब डॉलर से ज्यादा का निर्यात किया। चीन के बाद भारत दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक बन गया। सबसे ज्यादा फायदा गुजरात के किसान को हुआ, जिन्हें इस दशक में 8% की औसत वृद्धि मिली। लेकिन आज भारत फिर से कपास आयात कर रहा है।

भारत को सोयाबीन और मक्का (कॉर्न) चाहिए- वही दो फसलें जिन्हें अमेरिका हमें बेचना चाहता है। हमें इनकी कमी क्यों है? सबसे बड़ा कारण है विज्ञान का डर। आज हम अनाज में आत्मनिर्भर हैं, लेकिन फिर भी लगभग 24 अरब डॉलर का खाद्य तेल और दालें आयात करते हैं। इसके अलावा लगभग 10 अरब डॉलर के उर्वरक भी आयात करते हैं। हम 332 मिलियन टन अनाज पैदा करते हैं और चीन 706 मिलियन टन पैदा करता है। खेती जीडीपी में लगभग 16% योगदान देती है, लेकिन हमारे 50% से ज्यादा मतदाता इससे जुड़े हैं। ट्रम्प की टैरिफ नीति भारत के लिए एक नई हरित क्रांति लाने का मौका है।

Date: 13-08-25

लोकतंत्र पर अब नए तरह के खतरे सामने आने लगे हैं

प्रियदर्शन, (लेखक और पत्रकार)

ट्रम्प के वक्तव्यों और फैसलों से दुनिया हैरान है। इतिहास में ऐसा कोई नेता याद नहीं आता, जिसने इतनी ढिठाई से नोबेल सम्मान की मांग की हो। जिसने लगातार शेखी भरे बयान दिए हों और उनसे हो जो लगभग ब्लैकमेलिंग की भाषा में दूसरे देशों को धमकाने की कोशिश करता हो । सवाल है कि ट्रम्प अमेरिका के राष्ट्रपति कैसे बन गए वो भी दूसरी बार ?

इसे सवाल का जवाब उनके पहली बार चुने जाने के समय दो लेखकों- स्टीवेन लेवित्स्की और डेनियल जिब्लाट ने अपनी किताब 'हाऊ डेमोक्रेसीज डाई' में खोजने की कोशिश की थी। इस किताब में अमेरिकी लोकतंत्र और संविधान में 'गेटकीपिंग' के इंतजामों की नाकामी पर विचार किया गया है। किताब बताती है कि अब लोकतंत्र को फौजी बूटों और संगीनों से नहीं, बिल्कुल लोकतांत्रिक तरीकों से कुचला जाता है। लेखक इस बात पर मायूस होते हैं कि लोकतंत्र के खात्मे का जो अध्ययन वे दूसरे, छोटे समझे जाने वाले मुल्कों को आधार में रखकर कर रहे थे, वह उनके अपने मुल्क में भी घटित होता दिखेगा, इसकी उन्होंने कल्पना नहीं की थी। वे लोकतंत्र की पोशाक पहन कर आने वाले अधिनायकों की पहचान की चार कसौटियां भी बताते हैं- पहली यह कि वे लोकतांत्रिक तौर-तरीकों को अस्वीकृत करते हैं या उनके प्रति कम प्रतिबद्धता दिखाते हैं। दूसरे, वे अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों की वैधता को नकारते हैं- उन्हें देश के लिए खतरा या विदेशी एजेंट बताते हैं। तीसरी वे हिंसा को सहन करते या बढ़ावा देते हैं। चौथी वे नागरिक अधिकारों और मीडिया की आजादी में कटौती की मंशा रखते हैं।

ट्रम्प जिस तरह विरोधियों से पेश आते हैं, जिस तरह अमेरिकी सत्ता - प्रतिष्ठान के भीतर अपनी निजी राय को अहमियत देते हुए मीडिया सहित अन्य लोगों को झूठा साबित करने पर आमादा दिखाई देते हैं और इस प्रक्रिया में एक के बाद एक गलतबयानी करते हैं- उससे लगता है उनके भीतर अधिनायकवाद की प्रवृत्ति इन चारों कसौटियों से और आगे की है। लेकिन यह अधिनायकवादी प्रवृत्ति अमेरिकी लोकतंत्र ने स्वीकार क्यों की? क्योंकि उन्होंने 'अमेरिका फर्स्ट' जैसा नारा दिया, अपने को वहां का प्रथम नागरिक मानने वाली श्वेत आबादी के भीतर अन्याय झेलने की नकली तकलीफ पैदा की और बताया कि वे सच्चे अमेरिकी हैं।

दुर्भाग्य से यह सच्चा अमेरिकी सबसे ज्यादा अमेरिका के उन उदारवादी मूल्यों के ही खिलाफ खड़ा दिखता है, जिन्होंने बीती दो सदियों में अमेरिका को दुनिया का महान देश बनाया है। इन तमाम वर्षों में अमेरिका सबका स्वागत करता रहा, सबके लिए घर बना रहा, दुनिया भर से उद्यमी और पेशेवर आकर अमेरिकी बनते रहे और अमेरिका को बनाते रहे। लेकिन यह प्रक्रिया अब खतरे में है। 'अमेरिका फर्स्ट' के नाम पर जो नया अमेरिका बन रहा है, वह उसे कुछ कमजोर ही करेगा। वैसे भी अमेरिकी हितों के नाम पर अमेरिका के सत्ता प्रतिष्ठान ने दुनिया भर में जितने बम गिराए हैं, युद्ध कराए हैं, उससे अमेरिकी राष्ट्र-राज्य की प्रतिष्ठा पहले ही धूमिल हुई है।

दुनिया के कई देशों में उस प्रक्रिया की प्रतिच्छायाएं दिखाई पड़ती हैं, जिससे ट्रम्प पैदा होते हैं। लोकतंत्र सिर्फ वोटतंत्र नहीं होता, वह सामूहिकता की ऐसी भावना भी होता है, जिसमें सारे नागरिक बराबर हों- भारतीय संविधान ने इस बराबरी की गारंटी देकर इस लोकतांत्रिक भावना को ऐसी जमीन दी है, जिसे खत्म करना लगभग असंभव है। लेकिन इस पर लगातार निगाह रखने की जरूरत है कि लोकतंत्र की पोशाक में कहीं अधिनायकवादी प्रवृत्तियां विस्तार तो नहीं पा रहीं? कहीं लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाए रखने वाली संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता खतरे में तो नहीं, कहीं संसदीय प्रणाली उपेक्षित तो नहीं हो रही ? कहीं मीडिया की स्वतंत्रता पर दबाव तो नहीं हैं और कहीं नागरिकों के मौलिक अधिकार छीने तो नहीं जा रहे।

Date: 13-08-25

आपदाओं से बचने के लिए हमें बुनियादी ढांचे को बदलना होगा

अनिल जोशी, (पद्मश्री से सम्मानित पर्यावरणविद्)

हमने 'बिन पानी सब सून' जैसी कहावतें तो गढ़ीं, लेकिन जल प्रबंधन को कभी प्राथमिकता नहीं दी। हमने हवा, मिट्टी, जंगल और पानी- यानी प्रकृति के हर संसाधन को नजरअंदाज किया और आज ये सारे तत्व हमारे ही विरुद्ध खड़े हो गए हैं। इसके लिए हम ही जिम्मेदार हैं। धराली की त्रासदी ने एक बार फिर पूरे देश को झकझोर दिया है और यह केदारनाथ जैसी घटनाओं की याद दिला गई। अभी हताहतों की संख्या स्पष्ट नहीं है, क्योंकि पीड़ितों में स्थानीय निवासी भी थे और यात्री भी। एक क्षण में सब कुछ समाप्त हो गया- धराली उजड़ गया, जीवन शून्य हो गया। इस घटना के कारणों की पड़ताल जारी है, लेकिन कुछ बातें अब बहुत स्पष्ट और महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें समझना हम सबके लिए आवश्यक है।

सबसे पहली और मूल बात यह है कि हम आज भी प्रकृति के नियमों को न तो समझ पाए हैं और न ही उसके व्यवहार को लेकर कोई वैज्ञानिक समझ विकसित कर सके हैं। इसी कारण हम आज ऐसे मोड़ पर आ हैं, जहां से लौटना लगभग असंभव प्रतीत होता है। अगर कुछ संभावनाएं बची हैं, तो वे केवल इस रूप में हैं कि हम प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का रास्ता खोजें। धराली, केरल, सिक्किम देश के विभिन्न हिस्सों में बार-बार आ रही आपदाएं यही संकेत देती हैं कि जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग अब नियंत्रण बाहर हो चुके हैं।

आईपीसीसी ने एक दशक पहले ही चेताया था कि सबसे पहले इसका प्रभाव हिमालय और अंटार्कटिका जैसे संवेदनशील क्षेत्रों पर पड़ेगा। और अब यही हो रहा है। पारिस्थितिक दृष्टिकोण से देखें तो जहां-जहां प्रकृति के साथ अत्यधिक हस्तक्षेप हुआ है. जैसे हिमालय, केरल, चेन्नई- वहां विनाशकारी घटनाएं लगातार सामने आ रही हैं। प्रकृति का दोहन करने वाले, चाहे वे आम लोग हों या नीति-निर्माता, कोई भी इसके प्रभाव से बच नहीं पाएगा।

अगर धराली की घटना को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो स्पष्ट होता है कि यह घटना न तो अतिवृष्टि की थी, न ही सामान्य फ्लैश फ्लड जैसी । इस क्षेत्र से बहने वाली खीरगंगा नदी सदियों से हिमखंडों से पोषित होती रही है। जब इतना अधिक जल आया, तो यह केवल ऊपर स्थित हिमखंडों के झीलों में परिवर्तित होकर फूटने के कारण ही संभव हो सका। ऊंचाई वाले इलाकों में वर्षा की माप सटीक नहीं हो पाती, पर यह स्पष्ट है कि हिमखंड और वर्षा दोनों ने मिलकर यह तबाही मचाई।

अब सवाल यह है कि हम इससे क्या सीखते हैं? पहली बात यह है कि अब हिमालय की ऊंचाइयों पर स्थित हिमखंड झीलों में बदल रहे हैं। वैज्ञानिक कई वर्षों से इस बारे में चेतावनी दे रहे हैं। इसलिए जिन क्षेत्रों में तलहटी में बसाहट है, हमें ऊपरी इलाकों में स्थित हिमखंडों का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन करना होगा कि वे झील में तो नहीं बदल रहे और भविष्य खतरा तो नहीं बन सकते।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमने नदियों, गाड़-गधेरों के प्राकृतिक प्रवाह को रोक दिया है और विज्ञान की समझ का उपयोग किए बिना उनके चारों ओर अनियंत्रित बसाहटें खड़ी कर दी हैं। इसका परिणाम अब सामने आ रहा है- पानी ने हमें लील लिया।

तीसरी बात यह है कि अब समय आ गया है जब उत्तराखंड ही नहीं, पूरे देश को अपने ढांचागत विकास की नीतियों पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। हम भूकम्प संभावित क्षेत्रों में रहते हैं और फ्लैश - पलड जैसी आपदाएं भी बढ़ती जा रही हैं। इन सबसे हमारा बुनियादी ढांचा ही सबसे पहले प्रभावित होता है, इसलिए हमें अपनी इंफ्रास्ट्रक्चर नीति पर गंभीरता से पुनर्विचार करना होगा।

साथ ही हमें सेटलमेंट मैपिंग यानी बसाहट के नक्शों का अध्ययन भी करना होगा। पिछले 200 वर्षों में हमारे रहन-सहन, स्थान और आबादी में बहुत बदलाव आया है। जब ये बस्तियां हिमाचल, उत्तराखंड या अन्य हिमालयी क्षेत्रों में बसी थीं, तब इन आपदाओं की कोई कल्पना नहीं की गई थी। लेकिन अब जब परिस्थितियां पूरी तरह बदल चुकी हैं, तो हमें भी अपनी नीतियों को बदलती जलवायु और पारिस्थितिकी के अनुरूप ढालना होगा । अगर हमने अभी भी चेतना नहीं ली, तो जान-माल की हानि को रोकना लगभग असंभव होगा।

दैनिक जागरण

Date: 13-08-25

महाभियोग की लंबी प्रक्रिया

संपादकीय

इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि अपने सरकारी आवास में अधजले नोट मिलने के कारण इलाहाबाद हाई कोर्ट भेजे गए जस्टिस यशवंत वर्मा के खिलाफ महाभियोग प्रक्रिया आगे बढ़ती हुई दिख रही है। लोकसभा अध्यक्ष ने पर्याप्त संख्या में सांसदों के हस्ताक्षर वाले महाभियोग प्रस्ताव को स्वीकार करने के साथ ही यशवंत वर्मा पर लगे गंभीर आरोपों की जांच के लिए जो समिति गठित की, उसमें सुप्रीम कोर्ट के जज के साथ मद्रास हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश भी हैं। जब यह समिति अपनी रिपोर्ट देगी, तब संसद में महाभियोग प्रस्ताव पर चर्चा की नौबत आएगी। माना जाता है कि ऐसा शीतकालीन सत्र में हो सकता है। इसका मतलब है कि यशवंत वर्मा कुछ और माह तक सुविधाओं का लाभ लेते रहेंगे और न्यायाधीश कहलाते रहेंगे। क्या वह न्यायपालिका और लोकतंत्र का उपहास नहीं होगा? जस्टिस यशवंत वर्मा के दिल्ली स्थित सरकारी आवास में इसी वर्ष मार्च में तमाम अधजले नोट मिले थे। वे यह नहीं बता पाए कि उनके सरकारी आवास में इतनी अधिक राशि कहां से आ गई और कौन रख गया? उनकी मानें तो किसी ने उनके खिलाफ साजिश की है। क्या यह बात आसानी से हजम होने लायक है ? आखिर हाई कोर्ट के जज के सरकारी आवास में कौन बड़ी संख्या में नोट रख सकता है ?

यह बिल्कुल भी ठीक नहीं कि प्रथमदृष्टया गंभीर किस्म के भ्रष्टाचार के दोषी नजर आ रहे जस्टिस यशवंत वर्मा त्यागपत्र देने के बजाय महाभियोग प्रक्रिया का सामना करने की जिद ठाने हुए दिख रहे हैं। इससे तो भारतीय न्यायपालिका की प्रतिष्ठा पर चोट ही पहुंच रही है। यह शर्मनाक है कि यशवंत वर्मा इसके बाद भी इस्तीफा देने की जरूरत नहीं समझ रहे हैं कि उनके आवास में अधजले नोट मिलने की जांच करने वाली सुप्रीम कोर्ट की समिति ने उन्हें कठघरे में खड़ा किया और उनकी यह दलील मानने से इन्कार किया कि उनकी सफाई भरोसा करने लायक नहीं है। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने उनकी वह याचिका खारिज कर दी, जिसमें उन्होंने अपने खिलाफ सुप्रीम कोर्ट की आंतरिक जांच समिति की रिपोर्ट को चुनौती दी श्री । कायदे से इस याचिका के खारिज होते ही उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए था, लेकिन ऐसा लगता है कि वे महाभियोग की प्रक्रिया का सामना करते हुए अपने बचाव के जतन करेंगे। शायद इसलिए करेंगे कि अभी तक उच्चतर न्यायपालिका के किसी भी जज के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव पारित नहीं हो सका है। निःसंदेह इसका यह मतलब नहीं कि उच्चतर न्यायपालिका में कहीं कोई भ्रष्टाचार नहीं है। सच्चाई इसके विपरीत है। अच्छा यह होगा कि भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों से घिरे न्यायाधीशों से मुक्ति पाने की कोई आसान व्यवस्था बनाई जाए।

जनसत्ता

Date: 13-08-25

जोखिम बनाम संवेदना

संपादकीय

इसमें कोई दोराय नहीं कि सभ्यता के विकास क्रम में सहयोग और जरूरत के मुताबिक कुछ जीव-जंतु मनुष्य की आम जीवनशैली में घुलमिल गए और कई लोग आज कुछ पशु या पक्षियों को अपने साथ एक अभिन्न हिस्से के तौर पर देखते हैं कुत्ता उनमें से एक है, जिसे आज बहुत सारे घरों में एक पालतू पशु के रूप में भी जगह मिली है। वहीं सड़कों गलियों में घूमते ऐसे तमाम आवारा में कुत्ते हैं, जो हमेशा तो नुकसान नहीं पहुंचाते, लेकिन हाल के वर्षों में ऐसी घटनाओं में तेज बढ़ोतरी हुई है, जिनमें उनकी वजह से खासतौर पर बच्चों और बुजुगों के सामने जोखिम पैदा हुआ है। देश के अलग-अलग हिस्सों से अक्सर इस तरह की खबरें आती हैं, जिनमें घर के बाहर गली या चौराहे पर रहने वाले कुत्तों ने किसी बच्चे या फिर बुजुर्ग को नोच खाया या मार डाला। इसके अलावा, कुत्तों के काटने से होने वाले रेबीज के संक्रमण के भी मामलों में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। शायद ऐसी घटनाओं में खासी बढ़ोतरी को देखते हुए ही सुप्रीम कोर्ट ने इस मसले पर स्वतः संज्ञान लिया और एक अहम आदेश जारी किया।

शीर्ष अदालत ने कुत्तों के काटने और रेबीज की बढ़ती घटनाओं पर चिंता जताते हुए कहा कि आठ हफ्तों के भीतर दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में सड़कों से सभी आवारा कुत्तों को हटाया जाए और उन्हें कुत्तों के लिए बने आश्रय गृहों में रखा जाए। निश्चित रूप से अदालत के इस आदेश के पीछे आवारा कुत्तों से उपजी समस्या के दिनोंदिन गंभीर शक्ल अख्तियार करते जाना और इंसानी जीवन के सामने बढ़ते जोखिम के प्रति चिंता है। मगर इस आदेश के साथ ही समाज में इस बात पर बहस खड़ी हो गई है कि कुत्तों के प्रति दयाभाव रखने वाले समाज में ज्यादा सख्त होना कितना उचित है। पशुओं या किसी भी जीव के प्रति संवेदनशील होना एक सहज मानवीय गुण है। यह भी समझा जा सकता है कि इंसानी बस्तियों के विस्तार के साथ-साथ जीव-जंतुओं के पर्यावास के क्षेत्र जैसे-जैसे सिकुड़ते गए हैं, वैसे-वैसे दूसरे पशुओं और पक्षियों का सहज जीवन बाधित हुआ है। ऐसे में आवारा कुत्तों के स्वभाव में भी बदलाव आया है और उनके भीतर आक्रामकता बढ़ी है। इस स्थिति का खमियाजा सीधे तौर पर आम लोगों को उठाना पड़ा है।

दुनिया के कई देशों में आवारा कुत्तों और उनसे उपजी समस्या से निपटने के लिए कारगर उपाय किए गए हैं, तो भारत में इस पर एक व्यावहारिक नजरिया अपनाया जा सकता है। रेबीज से बचाव के लिए टीकाकरण से लेकर

बंध्याकरण और कुत्तों के अनुकूल उचित माहौल के आश्रय गृह बना कर कुछ हद तक इस समस्या से पार पाने की कोशिश की जा सकती है। दरअसल, समस्या को स्वीकार करना उसका हल निकालने की शुरुआत है। सरकार ने इसी साल एक अप्रैल को लोकसभा में बताया था कि पिछले वर्ष देश भर में कुत्तों के काटने के करीब सैंतीस लाख पंद्रह हजार मामले सामने आए थे। अकेले दिल्ली में पिछले वर्ष रेबीज से चौवन मौतें दर्ज की गई थीं। देश भर में रेबीज से हर वर्ष अठारह से बीस हजार मौतें होती हैं। पशुओं से प्यार के बरबस आवारा कुत्तों की वजह से उपजा जोखिम एक ऐसी हकीकत है, जिसमें यह सोचना जरूरी लगता है कि संवेदना का दायरा कितना विस्तृत हो कि न तो कुत्तों के प्रति इंसानी समाज को क्रूरता करने की जरूरत पड़े, न ही कुत्तों की वजह से बच्चे, बुजुर्गों या अन्य इंसानी जान को कोई खतरा पैदा हो।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 13-08-25

आवारा कुत्तों की शामत

संपादकीय

दिल्ली-एनसीआर में आवारा कुत्तों की शामत आ गई है। अब वे शहरों की गलियों में मुक्त विचरण नहीं कर पाएंगे। उन्हें आश्रय स्थलों में रहना होगा। सुप्रीम कोर्ट ने सोमवार को अधिकारियों को सख्त निर्देश दिया कि वे दिल्ली-एनसीआर के इलाकों से सभी आवारा कुत्तों को उठाएं और उन्हें आश्रय स्थलों में रखें। न्यायालय ने अधिकारियों को चेताया कि कि कुत्ते आश्रय स्थलों से किसी सूरत में सड़कों पर वापस नहीं आने चाहिए। जाहिर है कि यह काम आराम से करना संभव नहीं होगा। अधिकारी अदालत के कोप से बचने को अभियान चलाएंगे। इस अभियान में आवारा कुत्तों को पकड़ने और उठाने के लिए जो तरीके अपनाए जाएंगे उससे पशु प्रेमी ही नहीं कुत्तों से घृणा करने वाले भी विचलित हो सकते हैं आवारा कुत्तों की समस्या को बेहद गंभीर मानते हुए कोर्ट की पीठ ने चेतावनी दी कि यदि कोई व्यक्ति या संगठन आवारा कुत्तों को उठाने के काम में बाधा डालेगा तो उसके खिलाफ अदालत की अवमानना की कार्यवाही होगी। कोर्ट ने आवारा कुत्तों के काटने से रेबीज फैलने के खतरे की आशंका पर 28 जुलाई को स्वतः संज्ञान लिया और मामले की सुनवाई करते समय बेहद सख्त रुख अपनाया। पीठ ने पूछा कि क्या पशु कार्यकर्ता और कथित पशु प्रेमी उन बच्चों को वापस ला पाएंगे जो रेबीज के शिकार हो गए। शीर्ष अदालत ने दिल्ली सरकार ही नहीं गुरुग्राम, नोएडा एवं गाजियाबाद के नगर निकायों को भी सभी

आवारा कुत्तों को पकड़ कर आश्रय स्थलों में रखने को कहा। कोर्ट ने आवारा कुत्तों के लिए बनाए जाने वाले आश्रय स्थलों में पर्याप्त कर्मचारी हों, उनकी नसबंदी और टीकाकरण के साथ-साथ उनकी देखभाल भी करें। इन केंद्रों पर सीसीटीवी निगरानी होगी ताकि सुनिश्चित हो कि कोई भी कुत्ता छुत्तने न पाए या बाहर न ले जाया जाए। कोर्ट ने फिलहाल 5,000 कुत्तों के लिए छह से आठ हफ्तों में आश्रय स्थल बनाने और इन्हें क्रमिक रूप से बढ़ाने का सुझाव दिया है और कुत्तों की धरपकड़ शुरू करने को कहा है। कुत्ते के काटने की सूचना के लिए हेल्पलाइन बनाने और शिकायत पर चार घंटे के भीतर काटने वाले कुत्ते को पकड़ने का निर्देश दिया गया है। आश्रय स्थलों को समाधान मान लेना भी उचित नहीं लगता। गाय सांड जैसे पशु गोशालाओं के बावजूद मुक्त घूमते और भूख से बेहाल कूड़े पर मुंह मारते दिख जाते हैं। ऐसे में भूखे और बीमार कुत्तों को कौन पूछेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 13-08-25

बड़बोले मुनीर

संपादकीय

पाकिस्तानी सेनाध्यक्ष जनरल आसिम मुनीर की बयानबाजी से उनकी हताशा ही ध्वनित होती है, वरना अमेरिकी सरजमीं पर खड़े होकर वह भारत के साथ भविष्य की किसी जंग में परमाणु युद्ध छिड़ने या फिर भारतीय उद्योग व उद्योगपति को निशाना बनाने की बचकानी बातें नहीं करते । तब तो और, जब नोबेल शांति पुरस्कार के लिए लालायित अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को यह सम्मान दिए जाने के एक प्रस्तावक वह खुद हीं। बहरहाल, भारतीय विदेश मंत्रालय ने उचित ही मुनीर के इस दुस्साहस का करारा जवाब दिया है और उन्हें याद दिलाया है कि परमाणु युद्ध के भयादोहन को भारत बहुत पहले झटक चुका है। जनरल मुनीर शायद याद नहीं करना चाहते कि भारतीय फौज ने कारगिल में जब उन्हें परास्त किया था, तब भी उनके मुल्क के पास परमाणु हथियार थे और पहलगाम में उनके गुर्गों की 22 अप्रैल की अमानवीय करतूत के जवाब में हमारी सेना ने जब ऑपरेशन सिंदूर किया, तब भी उसके पास यह जखीरा था। इसलिए ऐसी हिमाकत का अंजाम समझते हुए किसी फौजी या राजनीतिक नेतृत्व को अपने हल्केपन का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

दरअसल, अपने वजूद में आने के साढ़े सात दशक बाद भी पाकिस्तान का शीर्ष नेतृत्व भारत ग्रंथि से मुक्त नहीं हो सका है। ऑपरेशन सिंदूर के बाद से ही उसके फौजी व राजनीतिक नेतृत्व में होड़ सी मची है कि कैसे वे आम अवाम में अपनी उपयोगिता अधिक साबित कर सकें। यही कारण है कि जनरल मुनीर एक पेशेवर जनरल के

बजाय कट्टरपंथी मौलवी की जुबान ज्यादा बोलते दिखते हैं और बिलावल भुट्टो जरदारी हर चौथे दिन सिंधु नदी के जल के लिए भारत से जंग लड़ने की मुनादी करते रहते हैं। दरअसल, मुनीर के बयान बता रहे हैं कि उनकी महत्वाकांक्षा क्या है। पाकिस्तान का इतिहास उसके जनरलों की ऐसी महत्वाकांक्षाओं और उनकी कारस्तानियों से भरे पड़े हैं। कारगिल के बाद मुशर्रफ की हैसियत में क्या बदलाव हुआ था, यह कोई रहस्य नहीं है और यही वह मोड़ है, जहां भारत को अधिक सतर्कता बरतने की जरूरत है।

यह भी अकारण नहीं है कि दो महीने के भीतर मुनीर दो बार अमेरिका पहुंचे। पिछले दौरे में वह राष्ट्रपति ट्रंप के मेहमान बने थे, जो एक चौंकाने वाली घटना थी, क्योंकि हाइट हाउस किसी फौजी मुखिया को अमूमन दावत नहीं देता, जब तक कि वह राष्ट्राध्यक्ष या शासनाध्यक्ष के ओहदे पर न बैठा हो। इस दूसरे दौरे में मुनीर ने पाकिस्तानी अमेरिकी लोगों को संबोधित करने के अलावा अमेरिकी सैन्य अधिकारियों व राजनेताओं से भी मुलाकात की। बीते कुछ समय में इस्लामाबाद के प्रति वाशिंगटन के रुख में साफ बदलाव दिखा है। इस्लामाबाद व ढाका की बढ़ती नजदीकियों, तेहरान से हालिया समझौतों और बीजिंग की सदाबहार मित्रता ने शायद मुनीर को अति आत्मविश्वास का शिकार बना दिया है। निस्संदेह, नई दिल्ली इस व्यूह रचना से गाफिल नहीं है। मगर मुनीर को याद रखना चाहिए कि अपने हितों की रक्षा के लिए भारत महाशक्तियों के दबाव के आगे भी नहीं झुकता। वैसे भी, अपनी जनता के अहं को तुष्ट करने के लिए किसी राजनेता के मुंह से ऐसे बयान तो फिर भी समझ आते हैं, मगर एक सेनाध्यक्ष का ऐसा बड़बोलापन उसकी कमजोरी की निशानी मानी जाती है। मुनीर को भारतीय सेनानायकों से संयम सीखना चाहिए। एक फौजी की देशभक्ति युद्ध के मोर्चों, देशवासियों की मदद में दिखती है, कोरी घुड़कियों और शब्दों की लफ्फाजी में नहीं !

Date: 13-08-25

रोजगार को नया रूप देने लगा एआई

रवि वेंकटेशन, (पूर्व अध्यक्ष माइक्रोसॉफ्ट इंडिया)

जुलाई में माइक्रोसॉफ्ट ने अपने 9,000 कर्मचारियों की छंटनी का एलान किया। साल 2025 में अब तक उसने 15,000 से अधिक कर्मियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया है, जबकि यह कंपनी किसी आर्थिक मुश्किल से नहीं जूझ रही। उसने अभी-अभी घोषणा की है कि उसे 27.2 अरब डॉलर की शुद्ध तिमाही कमाई हुई है और उसके शेयरों की कीमत 500 डॉलर प्रति शेयर से ऊपर पहुंच गई है। लिहाजा यह सवाल स्वाभाविक है कि वह हजारों लोगों की छंटनी क्यों कर रही है?

इसका जवाब डरावना है। दरअसल, माइक्रोसॉफ्ट की यह छंटनी किसी आर्थिक सुस्ती का संकेत नहीं है, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के युग में काम-काज का तरीका बदल रहा है, जिसके कारण संसाधनों को नए सिरे से बांटा जा रहा है। छंटनी इसी का नतीजा है। यह खतरे की पूर्व चेतावनी है और संकेत यही है कि एआई के कारण विशेष रूप से ज्ञान संबंधी कामकाज की दुनिया बड़े पैमाने पर बदलने वाली है। इसके निहितार्थ तकनीकी दिग्गजों के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण है, जितने शिक्षकों, उद्यमियों और नीति- निर्माताओं के लिए।

माइक्रोसॉफ्ट ने अब तक एआई से जुड़े बुनियादी ढांचे के निर्माण में 80 अरब डॉलर से अधिक का निवेश किया है। गिटहब कोपायलट जैसे सहायक उपकरण अब इसके 30 फीसदी से अधिक कोड लिखने लगे हैं। यानी, एआई पहले से ही उन कामों को करने लगा है, जिसे पहले इंसान किया करते थे, और यह शुरुआत हुई है, उच्च शिक्षित इंजीनियरों से हालांकि, गेमिंग स्टूडियो, कानूनी टीमों, विक्री विभागों और मार्केटिंग तक में रोजगार छीने जाने लगे हैं। कई अच्छी रचनात्मक योजनाओं को चुपचाप ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है, जैसे परफेक्ट डार्क वीडियो गेम की अगली सीरीज कुछ स्टूडियो का आपस में विलय भी कर दिया गया है, जो बताता है, संगठित कार्यबल भी इससे अछूते नहीं हैं।

साफ है, वह लागत घटाने की कोई अस्थायी कवायद नहीं, बल्कि कार्यबल को रणनीतिक रूप से गढ़ने का प्रयास है। बड़े संगठनों के लिए सॉफ्टवेयर बनाने और क्लाउड इंफ्रास्ट्रक्चर मुहैया कराने में केंद्रीय भूमिका निभाने के कारण माइक्रोसॉफ्ट व्यावसायिक भावना और तकनीकी रुझानों को लेकर हमेशा से नई सोच सामने रखती है। इसलिए जब वहां छंटनी होती है, तो वह अक्सर अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव का पूर्वाभास होता है। ताजा घटनाक्रम में भी यह चेतावनी नत्थी है कि एआई सिर्फ रोजगार बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि यह पूरे रोजगार परिदृश्य को ही बदलने जा रहा है।

अमेजन, गूगल, मेटा, सेल्सफोर्स और कई अन्य कंपनियों ने भी बड़ी कटौती की है, जिनमें से कुछ ने तो सीधे-सीधे इसका ठीकरा एआई पर फोड़ा है। यहां तक कि पारंपरिक रूप से 'सुरक्षित' माने जाने वाले दफ्तरी कामकाज भी तेजी से असुरक्षित होते जा रहे हैं। माइक्रोसॉफ्ट रिसर्च की एक हालिया रिपोर्ट में प्रोग्रामर, गणितज्ञ, ग्राहक सेवा एजेंट, अनुवादक, शोधकर्ता, लेखक, कानूनी सलाहकार और सेल्सपर्सन पर सबसे पहले मार पड़ने की आशंका जताई गई है। इससे इस लोकप्रिय धारणा को भी चोट पहुंची है कि केवल नियमित या निम्न स्तरीय नौकिरयां ही खतरे में आएंगी।

कई टेक सीईओ आने वाली सुनामी को यह कहकर हल्का करने की कोशिश करते हैं कि 'एआई आपका स्थान नहीं लेगा, बल्कि आपकी जगह पर ऐसा व्यक्ति काम करेगा, जो एआई से परिचित होगा' या 'हर तकनीक कुछ नौकरियों को खत्म करती है, पर कई नए रोजगार पैदा भी करती है, और एआई भी इससे अलग नहीं है । मगर यह मुद्दे का सरलीकरण करना होगा। हमें पता होना चाहिए कि एआई कई नौकरियों और वेतन पर जल्द ही विनाशकारी प्रभाव डाल सकता है।

भारत जैसे देशों में इससे खतरे भी पैदा होंगे, तो बदलाव की बयार भी वह सकती है। एआई के कारण यहां सूचना प्रौद्योगिकी, बीपीओ, कंटेंट निर्माण जैसे क्षेत्रों में लाखों रोजगार पर खतरा मंडरा रहा है। चूंकि ये क्षेत्र आर्थिक विकास के इंजन रहे हैं, इसलिए यदि हम सक्रिय नहीं हुए, तो हमारी तरक्की को एआई प्रभावित कर सकता है। मगर दूसरी तरफ, एआई में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कृषि और सार्वजनिक सेवा जैसे क्षेत्रों में नए समाधान खोजने की क्षमता है। यह तेजी से हमारी उत्पादकता बढ़ा सकता है, सेवाओं को व्यक्तिगत बना सकता है और मानव क्षमताओं में अंतर को पाट सकता है। हालांकि, यह भी तभी होगा, जब हम सही बुनियादी ढांचे, कौशल और सुरक्षा उपायों पर निवेश करें।

साफ है, एआई क्रांति किस तरह आकार लेगी, वह सीईओ, नीति-निर्माताओं और हमारे माननीयों द्वारा उठाए गए कदमों से तय होगा। इसके लिए हमें नई रणनीति बनानी होगी। मसलन, सबसे पहले, शिक्षा और कौशल विकास की नई कल्पना करनी होगी। हमें पारंपरिक डिग्री आधारित शिक्षा से आगे बढ़ना होगा और टिकाऊ, लचीला व तकनीकी सक्षम कौशल विकास अपनाना होगा। बुनियादी डिजिटल साक्षरता, डाटा प्रवाह आदि को प्राथमिकता देनी होगी।

दूसरा, लोगों में उद्यमिता बढ़ानी होगी। ऑटोमेशन के कारण यदि औपचारिक रोजगार कम हो रहे हैं, तो हमें लाखों लोगों के लिए ऐसी परिस्थितियां बनानी होंगी कि वे स्व-रोजगार या सूक्ष्म उद्यमों की ओर बढ़ सकें। आज के समय में उद्यमशीलता करियर विकल्प नहीं, बल्कि जीवन जीने का कौशल है। तीसरा, समावेशी एआई रणनीति बनानी होगी । एआई को केवल अमीरों के लिए तैयार नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसका दायरा बढ़ाकर किसानों, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, शिक्षकों, छोटे कारोबारियों, अनौपचारिक श्रमिकों तक करना होगा और भारत इसमें दुनिया का नेतृत्व कर सकता है।

चौथा, मानवीय कॉरपोरेट संस्कृति को बढ़ावा देना होगा। जिस तरह से बिना बताए छंटनी की जा रही है, उससे संगठनों में अविश्वास बढ़ता है। कंपनियों को अपने कार्यबल में बदलाव लाने के लिए अधिक मानवीय नजरिया अपनाना चाहिए और पांचवां, सरकारों को श्रम बाजार में बदलावों पर नजर रखनी चाहिए और एआई युग के अनुकूल सामाजिक सुरक्षा का विस्तार करना चाहिए।

कोयला खदानों ने कार्बन मोनो ऑक्साइड जैसी खतरनाक गैस के पूर्वाभास के लिए कैनरी नामक छोटी चिड़िया ले जाई जाती थी। इसके पीछे वही मकसद था कि खतरे का संकेत मिलते ही तुरंत सुरक्षा कदम उठाए जाएं। माइक्रोसॉफ्ट की छंटनी वही संकेत है। यह बताता है कि एआई पहले से ही मौजूद है और यह काम की प्रकृति को बदल रहा है। जाहिर है, हमें अभी से साहस और सावधानी के साथ कदम उठाने होंगे।